THE ECONOMIC TIMES

Date: 24-07-18

Indore City Breaks New Fiscal Ground

ET Editorials

It is one small step in diversifying the instruments available in the debt market, but a significant stride for fuelling urbanising India's engines of growth: our extant and future cities. The recent maiden debt listing of municipal bonds, or munis, on the NSE, of Indore Municipal Corporation, is path-breaking in that it creates a market for municipal bonds. Indore and a few other urban bodies in Madhya Pradesh reportedly plan to raise Rs 1,200 crore via munis. There's a huge resource gap nationally when it comes to municipal bodies, and munis can be a viable financing option for well-structured urban development projects. Provided, local governments have the fiscal capacity to service the bonds they issue.

In fast urbanising India, the combined revenue receipts of all municipalities add up to under Rs 1,50,000 crore, less than 1% of GDP, with less than a third of the funds locally raised. Estimates suggest that the investment requirement is far higher, over 2% of GDP annually. The way forward is to use urban planning tools to renew and expand our cities, improve neighbourhoods and increase property values. The policy focus needs to be to boost municipal revenues from property tax collections, reasonable user charges and shares in the taxes collected by state governments. Besides, given the huge infrastructural deficit, say, for urban public transport, solid waste management and sewerage treatment, munis can provide stable long-term returns to create energy-efficient and climate-friendly infrastructure. But, in tandem, we need transparency in municipal finances and standardised norms for budgeting and disclosure.

There are over 4,000 urban local bodies nationally, and over 160 municipal corporations. These need capacity building as well as political reform and empowerment, complete with participative democracy in local government, so that there is the necessary political will for creating and running efficient towns and cities, to enhance liveability, creativity and economic output. Future prosperity depends on it.

नईदुनिया

Date: 24-07-18

अनैतिकता की महामारी का इलाज

बाल-तस्करी और यौन शोषण के शिकार मासूम चेहरे आसभरी निगाहों से नए प्रस्तावित कानून की ओर देख रहे हैं।

कैलाश सत्यार्थी, (लेखक नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित बाल अधिकार कार्यकर्ता हैं)

संसदीय लोकतंत्र के इतिहास में ऐसे कुछ ही अवसर आते हैं, जब सदियों पुरानी सामाजिक-सांस्कृतिक विसंगतियों से पनपे अपराधों को रोकने के लिए प्रभावी कानून पारित किए जाते हैं। संसद के इस मानसून सत्र में ऐसा ही अवसर आया है। गुलामी का एक घिनौना रूप मानव तस्करी यानी ह्युमन ट्रैफिकिंग हमारे समाज में कोढ़ की तरह फैला हुआ है। इसे खत्म करने के लिए पहली बार संसद में एक विधेयक 'ट्रैफिकिंग ऑफ पर्सन्स (प्रिवेंशन, प्रोटेक्शन एंड रिहैबिलिटेशन) बिल 2018 पेश हुआ है। पूरे राष्ट्र को तकरीबन रोज ही शर्मिंदगी से भर देने वाली बच्चों के साथ दुष्कर्म और यौन शोषण की घटनाओं ने अब 'अनैतिकता की महामारी का रूप ले लिया है। कुछ दिन पहले बच्चों के यौन शोषण और दुष्कर्म के खिलाफ सख्त सजा का प्रावधान करते हुए जो अध्यादेश लाया गया था, उसे भी कानून में बदलने का एक विधेयक 'क्रिमिनल लॉ (अमेंडमेंट) बिल 2018 लाया जा रहा है। एक आंकड़े के अनुसार देश में प्रति आठ मिनट पर एक बच्ची गुम होती है। इसी तरह हर घंटे करीब आठ बच्चे अपनी मां के आंचल से बिछुड़ जाते हैं। ये बच्चे ह्युमन ट्रैफिकिंग के शिकार होकर बाल मजदूरी, भिक्षावृत्ति और वेश्यावृत्ति आदि के लिए खरीदे-बेचे जाते हैं। इनका बचपन छिन जाता है और वे भय और हिंसा के साए में जीने को मजबूर हो जाते हैं। इतना ही नहीं, भारत में हर घंटे कहीं न कहीं दो बच्चे दुष्कर्म का शिकार होते हैं। दुष्कर्मी इन बच्चों के कोमल शरीर को ही नहीं, उनकी आत्मा को भी रौंद डालते हैं। ये महज आंकड़े भर नहीं। हर एक संख्या एक चीखते हुए मासूम चेहरे का प्रतिनिधित्व करती है। ऐसा चेहरा जो दुनिया के इस सबसे बड़े लोकतंत्र में जीवन, स्वतंत्रता व सुरक्षा जैसे संवैधानिक अधिकारों को खो रहा होगा।

मैं ह्युमन ट्रैफिकिंग से बचाए-छुड़ाए गए ऐसे हजारों बच्चों से मिला हूं, जो जानवरों से भी कम कीमत पर खरीदे और बेचे गए थे। कुछ महीने पहले हमने बिहार से ट्रैफिकिंग कर लाए गए बच्चों को दिल्ली की एक जींस फैक्ट्री से मुक्त कराया। यह फैक्ट्री बेसमेंट में चल रही थी। ये बच्चे तीन साल तक इस बेसमेंट से बाहर नहीं निकले थे। लिहाजा जब वे मुक्त होकर बाहर आए तो उनकी आंखें सूरज की रोशनी सहन करने की क्षमता खो सी चुकी थीं। ऐसे मामलों में मुजरिमों पर बाल मजदूरी, बंधुआ मजदूरी और किशोर न्याय से संबंधित कानूनों में कार्रवाई हो जाती है, लेकिन ट्रैफिकिंग के खिलाफ सख्त कानून के अभाव में दलालों पर कार्रवाई नहीं हो पाती।

पिछले कई दशकों से बाल दासता के खिलाफ अपने प्रयासों से मैंने जो सीखा है, उससे मैं महसूस करता हूं कि ये दोनों कानून इन अपराधों को मिटाने में सहायक होंगे। मैं इनका पुरजोर समर्थन इसलिए कर रहा हूं, क्योंकि ये कानून सिर्फ ह्युमन ट्रैफिकिंग में लिप्त लोगों और दुष्कर्मियों को सजा दिलाने भर के लिए नहीं हैं, बल्कि ये न्याय के सामाजिक और आर्थिक पहलुओं से भी जुड़े हैं। नया कानून ट्रैफिकिंग को एक संगठित आर्थिक अपराध मानते हुए हर जिले में विशेष अदालत गठित कर तय समयसीमा में सुनवाई करने और सख्त सजा का प्रावधान करता है। इसके साथ ही राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संगठित मानव तस्करों की साठगांठ को तोड़ने के लिए उनकी संपत्ति की कुर्की-जब्ती और अपराध से प्राप्त धन को जब्त करने का प्रावधान है। साथ ही सीमा पर ट्रैफिकिंग रोकने के लिए नेशनल एंटी ट्रैफिकिंग ब्यूरो का गठन किया जाएगा। यह कानून केवल आपराधिक दंड तक सीमित नहीं है, बल्कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत के आधार पर अपराध की रोकथाम और पीड़ितों को मुआवजा और पुनर्वास सुनिश्चित करता है। पीड़ितों को मुआवजे के लिए फैसला होने तक इंतजार नहीं करना पड़ेगा, बल्कि मुकदमा दायर होते ही उन्हें तात्कालिक राहत मिलेगी, इसके बाद उनका

आर्थिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पुनर्वास किया जाएगा। इसके लिए एक पुनर्वास कोष भी बनाया जाएगा। इन प्रावधानों से यह कानून बहुत प्रभावी हो जाएगा।

हमने हाल ही में किए अपने एक अध्ययन में पाया कि पॉक्सो कानून के तहत बच्चों के यौन शोषण के अब तक जितने मामले दर्ज हैं और जिस गति से इसके मुकदमों की सुनवाई हो रही है, उसकी सुनवाई पूरी होने में कई राज्यों में 50 से 100 साल तक लग जाएंगे। यानी आज जिस बच्ची के साथ दुष्कर्म हुआ है, उसे न्याय के लिए अपने नाती-पोतों के साथ अदालत के चक्कर लगाने पड़ेंगे। लेकिन नए कानून के बन जाने से ऐसी स्थिति नहीं आएगी और पीड़ितों को शीघ्र न्याय मिल पाएगा। 'क्रिमिनल लॉ (अमेंडमेंट) बिल 2018 में बच्चियों के खिलाफ जघन्य अपराध होने पर कठोर सजा और त्वरित व समयबद्ध कार्रवाई का प्रावधान किया गया है। इसमें दुष्कर्मियों को फौरन सजा मिल पाए, इसके लिए फास्ट ट्रैक अदालतों की स्थापना के साथ ही पुलिस की जांच और अदालती फैसले की भी समयसीमा तय की गई है।

संसद में इन दोनों विधेयकों का पेश होना सुखद है। इन कानूनों की मांग को लेकर हम लंबे समय से सड़क से लेकर न्यायालय तक संघर्ष करते रहे हैं। पिछले साल हमने ट्रैफिकिंग और बच्चों के यौन शोषण के खिलाफ सख्त कानून बनाने और इस बारे में लोगों को जागरूक करने के लिए देशव्यापी 'भारत यात्रा का आयोजन किया था। यह यात्रा 11 हजार किलोमीटर की दूरी तय कर 23 राज्यों से गुजरी थी। हमने वर्ष 2007 में बाल-तस्करी विरोधी दक्षिण एशियाई यात्रा का और 2011 में असम में एंटी ट्रैफिकिंग मार्च का आयोजन किया था। सुप्रीम कोर्ट में दायर हमारे संगठन 'बचपन बचाओ आंदोलन की ही एक याचिका पर 2011 में पहली बार भारत में ट्रैफिकिंग को परिभाषित किया गया था।

ट्रैफिकिंग और यौन शोषण के शिकार मासूम चेहरे उम्मीद भरी निगाहों से इस कानून की तरफ देख रहे हैं, क्योंकि यह कानून देश के हजारों बच्चों की सिसकियों को मुस्कराहटों में बदल सकता है। इसलिए सभी राजनीतिक दलों के नेताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं और बुद्धिजीवियों से मेरी विनम्र अपील है कि वे इस विधेयक को जल्द से जल्द संसद में पारित कराएं, ताकि एक आवश्यक कानून अस्तित्व में आए। ऐसे कानून की सख्त जरूरत है। नि:संदेह न्याय को एक कानून में समाहित करना मुमकिन नहीं है। इसलिए हो सकता है, इसमें कुछ खामियां हों। अगर ऐसा है तो इन खामियों को कानून के नियमों में दुरुस्त किया जा सकता है। जरूरत पड़ने पर अलग से कोई और अध्यादेश या विधेयक लाया जा सकता है। बच्चों के बचपन को खुशहाल बनाने के लिए यह विधेयक एक ऐतिहासिक अवसर की तरह है। इस अवसर को गंवाने का काम नहीं किया जाना चाहिए। हमारे बच्चे अब और इंतजार नहीं कर सकते।

Date:23-07-18

निरंकुश अराजकता

अगर सभ्य समाज को शर्मिंदा करने वाली भीड़ की हिंसक घटनाओं पर सख्ती नहीं बरती गई तो वे देश की बदनामी का कारण ही बनेंगी।

संपादकीय

एक ऐसे समय में जब सड़क से लेकर संसद तक भीड़ की हिंसा के मामले चर्चा और चिंता का विषय बने हुए हैं, तब राजस्थान के अलवर जिले में गो-तस्करी के संदेह में एक व्यक्ति की पीट-पीटकर हत्या यही बताती है कि ऐसी हिंसक घटनाओं को रोकने के पर्याप्त उपाय नहीं किए जा रहे हैं। यह वही अलवर जिला है, जहां करीब एक साल पहले एक अन्य व्यक्ति को इसी तरह गो-तस्कर मानकर मार दिया गया था। इसका मतलब है कि गोरक्षा के नाम पर अराजकता का सहारा लेने वाले तत्व बेलगाम बने हुए हैं।

चिंताजनक यह है कि राजस्थान में तथाकथित गो-रक्षकों की हिंसा के मामले कुछ ज्यादा ही सामने आ रहे हैं। अगर कानून एवं व्यवस्था को नीचा दिखाने और सभ्य समाज को शर्मिंदा करने वाली ऐसी घटनाओं पर सख्ती नहीं बरती गई तो वे देश की बदनामी का कारण ही बनेंगी। राजस्थान सरकार ने अलवर की घटना का संज्ञान लेते हुए दोषियों के खिलाफ कठोर कार्रवाई करने की बात अवश्य कही है, लेकिन केवल इतना ही पर्याप्त नहीं कि उसने जो कहा है, उस पर अमल करे। यह भी जरूरी है कि वह उन अराजक तत्वों को हर संभव तरीके से नियंत्रित करे, जो गो-रक्षक का चोला धारण कर हिंसा फैलाने में लगे हुए हैं। यह काम अन्य राज्य सरकारों को भी प्राथमिकता के आधार पर करना होगा, क्योंकि कथित गो-रक्षकों का उत्पात थमने का नाम नहीं ले रहा है।

आखिर ये कैसे गो-रक्षक हैं, जो किसी की परवाह करते नहीं दिख रहे हैं? ध्यान रहे कि चंद दिन पहले ही सुप्रीम कोर्ट ने भीड़ की हिंसा रोकने के लिए जो दिशा-निर्देश जारी किए थे, वे मूलत: उस याचिका की सुनवाई करते हुए दिए थे जिसमें गोरक्षा के नाम पर हो रहे हिंसक व्यवहार को कानून एवं व्यवस्था के लिए खतरा बताया गया था। हालांकि केंद्र सरकार और यहां तक कि खुद गृहमंत्री और प्रधानमंत्री की ओर से कई बार यह कहा जा चुका है कि हिंसा का सहारा लेने वाले फर्जी गो-रक्षक हैं और उनसे सख्ती से निपटने की जरूरत है, लेकिन कोई नहीं जानता कि राज्य सरकारें पर्याप्त सख्ती क्यों नहीं बरत रहीं? यह समझना भी कठिन है कि इन उत्पाती तत्वों को कहां से बल मिल रहा है?

नि:संदेह भीड़ की हिंसा के कई ऐसे भी मामले रहे हैं जिनके केंद्र में गाय नहीं थी, लेकिन इसमें दोराय नहीं कि कथित गो-रक्षकों की अराजकता मोदी सरकार की छवि पर बहुत भारी पड़ रही है। चूंकि गाय के नाम पर हो रही हिंसा के कारण मोदी सरकार की राष्ट्रीय से ज्यादा अंतरराष्ट्रीय छवि प्रभावित हो रही है, इसलिए उसकी यह जिम्मेदारी बनती है कि वह अपनी सक्रियता बढ़ाए। माना कि कानून एवं व्यवस्था राज्यों के अधिकार क्षेत्र वाला विषय है और केंद्र सरकार राज्यों को निर्देश ही दे सकती है, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि अब देश के अधिकांश राज्यों में भाजपा या फिर उसके सहयोगी दलों की सरकारें हैं। आज के युग में भीड़ की हिंसा को लेकर यह तर्क नहीं चल सकता कि पहले भी ऐसे मामले होते रहे हैं, क्योंकि अब पानी सिर के ऊपर से गुजरता दिख रहा है।

जनसत्ता

Date: 23-07-18

फिलहाल एहतियात

संपादकीय

अफवाहों को फैलने से रोकने के लिए वाट्सऐप ने संदेशों की संख्या सीमित करने का जो कदम उठाया है, उम्मीद की जानी चाहिए कि वह कारगर साबित होगा और अफवाहों पर लगाम लगेगी। ऐसा सख्त कदम तात्कालिक जरूरत है। पिछले कुछ महीनों में देश भर में भीड़ द्वारा हत्याओं के जितने मामले सामने आए, उन सबके पीछे पहला और बड़ा कारण अफवाहों का फैलना था। ज्यादातर अफवाहें बच्चा चोर को लेकर उड़ीं। ऐसी अफवाहें वाट्सऐप के जरिए फैलाई जातीं, लोग जमा होते और कोई निर्दोष इनकी हिंसा का शिकार हो जाता। इसके अलावा और भी कई ऐसी दहला देने वाली घटनाएं हुईं, जिनका कारण वाट्सऐप के जरिए फैली अफवाहें बनीं। संदेशों और बातचीत के इस ऐप का ऐसा भयानक दुरुपयोग चिंता का विषय बना हुआ है।

वाट्सऐप ने फिलहाल जो रास्ता निकाला है, उससे अफवाहों को फैलने से कितना रोका जा सकेगा, यह देखने की बात है। लेकिन फिलहाल इतनी उम्मीद तो की जानी चाहिए कि भड़काऊ और झूठे संदेश जिस तेजी से फैल रहे थे, उसमें कमी जरूर आएगी। हालांकि हकीकत यह है कि इसे पूरी तरह से बंद कर पाना संभव नहीं है। लेकिन फिर भी वाट्सऐप में अभी कुछ खास इंतजाम किए गए हैं। सबसे पहले तो किसी दूसरे व्यक्ति या समूह से आए संदेशों को दूसरों को भेजने की संख्या पांच तक सीमित कर दी गई है। कंपनी ऐसे तरीकों पर विचार कर रही है, जिनसे वीडियो और फोटो वाट्सऐप के जरिए न भेजे जा सकें, इनके लिए अलग से बंदोबस्त होगा। चौंकाने वाला तथ्य यह है कि पूरी दुनिया में सबसे ज्यादा भारतीय लोग ही हैं जो आए हुए संदेशों, वीडियो और फोटो को दूसरों की तरफ बढ़ा देते हैं। इस समस्या से निजात पाने के लिए ही सरकार ने वाट्सऐप को चेताया था कि वह इसका रास्ता निकाले। लेकिन सवाल है कि क्या वाट्सऐप ऐसे समूहों की पहचान कर सकता है, जो अफवाहें और झूठ फैलाने के काम को अंजाम दे रहे हैं? क्या वाट्सऐप ऐसा तरीका निकाल सकता है, जिसमें फर्जी और झूठे संदेशों, वीडियो और फोटो को शुरू में ही पहचान कर रोक दिया जाए?

लेकिन समस्या की जड़ कहीं और भी है। स्मार्टफोन और डाटा क्रांति ने सबके हाथ में मोबाइल और इंटरनेट सुलभ करा दिया है। हालत यह है कि लोग ज्यादातर वक्त वाट्सऐप, फेसबुक, ट्विटर जैसे सोशल मीडिया की लत के शिकार हो गए हैं। मुश्किल यह भी है कि जितने और जैसे संदेश, वीडियो और फोटो वाट्सऐप और दूसरे जरियों से हमें मिलते हैं, उनकी सत्यता की पुष्टि कैसे हो। किसी भी संदेश को पढ़ने या वीडियो-फोटो देखने के बाद ज्यादातर लोग विवेक का जरा भी इस्तेमाल करने की कोशिश नहीं करते। सोचते तक नहीं कि यह सच भी होगा या नहीं और यहीं से भीड़ जमा होनी शुरू हो जाती है। यह सरकार और समाज के लिए बड़ी चुनौती है। हालांकि फर्जी खबरों की असलियत जानने के लिए वाट्सऐप ने वैरिफिकेडो मॉडल लाने की बात कही है। ऐसा मॉडल मैक्सिको और ब्राजील में चुनाव से पहले इस्तेमाल किया गया था। भारत में भी आगामी चुनावों में फर्जी खबरों, अफवाहों के खतरों को देखते हुए इसके प्रयोग की बात उठी है। जरूरी है कि सोशल मीडिया के ऐसे दुरुपयोग पर रोक लगे। इसके लिए लोगों को जागरूक और विवेकशील बनाने की जिम्मेदारी भी सरकार को निभानी होगी।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 23-07-18

मेघालय युग

संपादकीय

वैसे तो मेघालय सदा ही हमारी स्मृतियों में रहता है। दुनिया में सबसे ज्यादा बारिश वाला स्थान चेरापूंजी है, इसे भला कोई भारतीय कैसे भूल सकता है? इसीलिए जिस प्रदेश में यह है, उसे हम मेघालय कहते हैं, यानी बादलों का घर। पर एक दूसरा सच भी है कि स्कूलों में जो इतिहास पढ़ाया जाता है, उसमें मेघालय समेत पूर्वोत्तर के राज्यों का जिक्र बहुत कम ही आता है। इतना जरूर बताया जाता है कि पाषाणकालीन सभ्यता के सबसे पुराने अवशेष मेघालय और उसके आस-पास ही मिलते हैं। लेकिन बाद के इतिहास में मेघालय को ज्यादा जगह नहीं मिलती। लेकिन अब पता चल रहा है कि हम जो इतिहास पढ़ते-पढ़ाते और सुनते-सुनाते हैं, वह सारा मेघालय में ही आता है। या दूसरे शब्दों में कहें, तो वह मेघालय युग का ही एक छोटा हिस्सा है। यानी जिस मेघालय को हम अपनी इतिहास की किताबों में थोड़ी सी जगह ही देते हैं, उस मेघायल युग में हमारा पूरा इतिहास भी बहुत ज्यादा जगह नहीं घेर पाता। यह कोई पहेली नहीं है, दुनिया भर के भूगर्भ वैज्ञानिकों ने धरती के इतिहास का जो नया वर्गीकरण पेश किया है, उसके अनुसार हम जिस युग में रह रहे हैं, उसका नाम है मेघालय युग। यह युग 4,200 वर्ष पहले शुरू हुआ था और अभी तक जारी है। इसे मेघालय युग का नाम इसलिए दिया गया कि धरती की जिन चट्टानों के अस्तित्व में आने से इसके नए युग की शुरुआत मानी गई, उनकी निर्माण प्रक्रिया को वैज्ञानिकों ने सबसे पहले मेघालय की एक गुफा से ही पाया था।

यह भारत की बात नहीं है, इंटरनेशनल कमीशन फॉर स्ट्रेटीग्राफी ने जिसे मेघालय युग का नाम दिया है, वह पूरी धरती पर लागू होता है, यानी हमारी पूरी दुनिया का इतिहास मेघालय युग का एक हिस्सा है। माना जाता है कि मानव के आदि पूर्वज एक लाख साल पहले ही इस धरती पर आ चुके थे, लेकिन पिछले 4,200 साल हमारे इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा हैं, क्योंकि इसी दौरान मानव सभ्यता ने आकार लिया और फिर यह सभ्यता लगातार आधुनिक होती गई। यह कुदरत के साथ सहयोग करके मानव द्वारा एक नई दुनिया बसाने का दौर भी है। प्रकृति से हासिल को अपने हिसाब से ढालकर खुद को आगे बढ़ाने का दौर भी है। यही वह दौर भी है, जब इंसान ने खुद को इस धरती की सीमाओं से निकालकर न सिर्फ अंतरिक्ष में जाने की कोशिश की, बल्कि वह पूरे अंतरिक्ष की थाह पाने में भी जुट गया। और यही वह दौर भी है, जब इंसानी गतिविधियों से पूरी धरती पर ही खतरा मंडराने लग गया है। माना जा रहा है कि धरती अगर इसी तरह गरम होती रही, तो जल्द ही उसके इतिहास का एक नया युग शुरू हो जाएगा।

बेशक यह हम सब की जिम्मेदारी है। पूरी दुनिया के सभी इंसानों की जिम्मेदारी है। धरती के हर कोने पर अपना हक जताने वालों के लिए अब अपनी जिम्मेदारी निभाने का वक्त आ गया है। पर शायद हम भारतीयों की जिम्मेदारी अब ज्यादा बढ़ गई है। यह धरती को बचाने के साथ ही एक ऐसे युग को भी बचाने का मामला है, जिसका नामाकरण हमारे देश के ही एक महत्वपूर्ण हिस्से पर हुआ है। धरती के युग को कैसे बचाया जाए, इसका थोड़ा-बहुत समाधान हमें शायद अब भी उस धरती से मिल सकता है, जिसके नाम पर युग है। मेघालय के लोग अभी भी कुदरत से सहयोग की परंपराओं से जुड़े हैं, उससे सीखने के लिए बहुत कुछ है।

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 23-07-18

Beyond MSPs

Agrarian crisis — of surpluses — is not amenable to traditional political fixes. Government must recognise this.

Editorial

A day before Friday's no-confidence motion in Parliament, the BJP-led government in Maharashtra fixed a minimum Rs 25-per-litre price for milk procured from farmers in the state. This, when most dairies are reportedly paying Rs 17-20 a litre, which is all they can afford at current sale realisations from skimmed milk powder (SMP). To enable them to pay its mandated price of Rs 25/litre, the Maharashtra government has announced a Rs 5-per-litre subsidy on the surplus milk that is converted into SMP. The scheme — a response to a state-wide stir by farmers, who have seen milk procurement prices slide from Rs 25-28 a litre a year ago — is doomed to failure on two counts.

First, it doesn't address the roots of the problem, which have to do with excess SMP stocks with dairies. The subsidy now being extended will only result in more SMP output, adding to the stocks and further depressing realisations. Secondly, the real "flush' season for milk is after October, when production by animals goes up due to improved fodder and water availability, along with reduced temperature and humidity levels. How is the Maharashtra government going to deal with the surplus situation, which will be far greater then? In fact, not only Maharashtra, even other major milk producers — be it Gujarat, Karnataka or Rajasthan — will face this problem. And it's not just milk. In sugar, too, mills are expected to start the 2018-19 crushing season from October with record opening stocks — and, on top of it, the prospect of production hitting a new all-time-high. There, again, the impact would be felt largely in Maharashtra and Uttar Pradesh, both BJP-ruled states.

India's agrarian crisis today — one of surpluses in most farm commodities — isn't amenable to traditional political fixes, such as announcing MSPs that may be fair and remunerative to farmers, but are divorced from market realities. Ensuring that farmers get these prices will not be easy, whether it is in milk and sugarcane or even a host of kharif crops due for market arrivals just over two months from now. That could portend trouble for the Narendra Modi government, which has been seeking to project a pro-farmer image ahead of the elections not too far away. But market-distorting MSPs and subsidies or loan waivers aren't the best way to help farmers. What they need primarily is income support, which is better done through a flat per-acre subsidy not specific to any crop or production-linked. This should be accompanied by scrapping the Essential Commodities Act, a legislation crafted for wartime shortages. Modi may do well to announce it in his Independence Day address, whose effect on "sentiment" in the commodity markets would be no less dramatic.

THE HINDU

Date: 23-07-18

Sunlight and Shadow

The government must roll back amendments that weaken the RTI Act

EDITORIAL

As a law that empowers the citizen, the Right to Information Act, 2005 quickly struck root in a country saddled with the colonial legacy of secretive government. The move by the NDA government to amend the far-sighted law aims at eroding the independence of the Information Commissions at the national level and in the States. The proposed amendments show that the Central government seeks control over the tenure, salary and allowances of the Chief Information Commissioner and Information Commissioners at the Centre, and the State Chief Information Commissioners. Such a change would eliminate the parity they currently have with the Chief Election Commissioner and Election Commissioners and, therefore, equivalence with a judge of the Supreme Court in matters of pay, allowances and conditions of service. The Centre will also fix the terms for State Information Commissioners. This is an ill-advised move and should be junked without standing on prestige. If at all, the law needs to be amended only to bring about full compliance by government departments and agencies that receive substantial funding from the exchequer, and to extend its scope to more institutions that have an influence on official policy. The Supreme Court has held the right to information as being integral to the right to free expression under Article 19(1)(a); weakening the transparency law would negate that guarantee.

In its rationale for the amendments, the Centre has maintained that unlike the EC, Information Commissions are not constitutional bodies but mere statutory creations under the law. This is a narrow view, betraying an anxiety to tighten the hold of the administration on the Commissions, which even now get little official support to fill vacancies and improve efficiency. A recent public interest petition filed in the Supreme Court by the National Campaign for People's Right to Information pointed out that the Central Information Commission has over 23,500 pending appeals and complaints, and sought the filling up of vacancies in the body. In many States, the Commissions are either moribund or working at low capacity owing to vacancies, resulting in a pile-up of appeals. The challenges to the working of the law are also increasing, with many State departments ignoring the requirement under Section 4 of the Act to publish information suo motu. The law envisaged that voluntary disclosure would reduce the need to file an application. Since fines are rarely imposed, officers give incomplete, vague or unconnected information to applicants with impunity. Proposals to make it easier to pay the application fee, and develop a reliable online system to apply for information, are missing. These are the serious lacunae. Attempts were made by the UPA government also to weaken the law, including to remove political parties from its purview. Any move to enfeeble the RTI Act will deal a blow to transparency.